विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	**P2: मध्यकालीन कविता -1**
इकाई सं. एवं शीर्षक	**M5: आदिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ**
इकाई टैग	**HND_P2_M5**

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**प्रो. कृष्ण कुमार सिंह** अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : kks5260@gmail.com
इकाई लेखक	**डॉ. बीर पाल सिंह यादव** सहायक प्रोफेसर, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : bpsjnu@gmail.com
इकाई समीक्षक	**प्रो. कृष्ण कुमार सिंह** अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : kks5260@gmail.com
भाषा संपादक	**प्रो. आनंद वर्धन शर्मा** प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : anandsharma_64@yahoo.co.in

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. संकुचित राष्ट्रीयता
4. ऐतिहासिकता का अभाव
5. आश्रयदाताओं की प्रशंसा
6. वीर एवं श्रृंगार रस की प्रधानता
7. युद्धों का सजीव वर्णन
8. सिद्ध, नाथ एवं जैन साहित्य
9. छंदों और अलंकारों का प्रयोग
10. खड़ी बोली की कविता
11. आदिकालीन गद्य साहित्य
12. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप -

- आदिकालीन साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकाल के विविध स्वरूप पर चर्चा कर सकेंगे।
- आदिकाल के विभिन्न काव्य रूपों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आदिकाल से प्रारंभ हो रही प्रवृत्तियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आदिकाल की काव्य रूढ़ियों से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन भाषा के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- खड़ी बोली की प्रारंभिक कविता का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अलंकारों एवं छंदों के बारे में जान सकेंगे।
- आदिकालीन गद्य साहित्य से परिचित हो सकेंगे।

2. प्रस्तावना

इस काल की समय सीमा आचार्य शुक्ल के अनुसार सम्वत् 1050 से 1375 सम्वत् तक है। हिंदी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों की शुरुआत आदिकाल से ही हुई है। इस युग में वीर, श्रृंगार, लोक पर आश्रित रचनाएं ही नहीं हुई अपितु सिद्धों, नाथों ने भी अपनी साहित्यिक उपस्थिति इसी काल में दर्ज कराई। आदिकालीन काव्य में इसीलिए विविध साहित्यिक प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। वस्तुतः काव्य की विविध प्रवृत्तियों का आरंभिक काल आदिकाल ही है। यह साहित्य अपभ्रंश से व्यापक रूप से प्रभावित है। इसका विकास राज्याश्रय, लोकाश्रय तथा धर्माश्रय में होता है जिसमें चरितकाव्य, रासोकाव्य, देशभाषा काव्य की प्रवृत्तियाँ प्रमुख रूप से उभरकर सामने आईं। इस पाठ के अंतर्गत हम आदिकालीन काव्य की प्रवृत्तियों की चर्चा करेंगे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार - "शायद ही भारतवर्ष के साहित्य में इतने विरोधों और स्वतोव्याघातों का युग कभी आया होगा। इस काल में एक तरफ तो संस्कृत के ऐसे बड़े-बड़े कवि उत्पन्न हुए जिनकी रचनाएँ अलंकृत काव्य परंपरा की चरमसीमा पर पहुँच गई थीं और दूसरी ओर अपभ्रंश के कवि हुए जो अत्यंत सहज भाषा में अत्यंत संक्षिप्त शब्दों में अपने मनोभाव प्रकट करते थे.... फिर धर्म, दर्शन के क्षेत्र में भी महान प्रतिभाशाली आचार्यों का उद्भव इसी काल में हुआ था दूसरी ओर निरक्षर संतों के ज्ञान-प्रचार का बीज भी इसी काल में बोया गया।" (हिंदी साहित्य का आदिकाल)। आगे चलकर यही प्रवृत्तियाँ हमें भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल में मिलती हैं लेकिन फिर भी इस काल में वीर, श्रृंगार एवं लोक साहित्य की रचना प्रमुख रूप से हुई है।

आदिकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ उनके रचनाकारों की अभिरुचियों के अनुसार बाँटी जा सकती हैं। सिद्धों एवं नाथों की प्रवृत्ति यदि धार्मिक थी तो जैन कवियों की प्रवृत्ति धार्मिक एवं श्रृंगारिक थी। रासो काव्यों के रचनाकारों की प्रवृत्ति वीरगाथात्मक एवं श्रृंगारिक दोनों थी। अतः हम कह सकते हैं कि ये तीनों प्रवृत्तियाँ कमोवेश सभी रचनाकारों में पाई जाती हैं। इस आधार पर आदिकाल के साहित्य को तीन तरह से देखा जा सकता है- 1. परंपरागत संस्कृत धारा, 2. प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा, 3. हिंदी

आदिकाल में अपभ्रंश प्रमुखतः धर्म की भाषा बन गई थी। जैन कवियों ने गुजरात में रहकर अनेक पुराणों को अपभ्रंश में नए रूपों में प्रस्तुत किया था। स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल, हेमचंद्र आदि जैनकवियों ने इसमें रचना की थी। देशभाषा हिंदी में जनता की मानसिक एवं भावात्मक दशाओं की अभिव्यक्ति एक वर्ग कर रहा था जिसे भाट या चारण कवि कहा गया।

3. संकुचित राष्ट्रीयता

उस समय गहरवार, चौहान, चंदेल, परिहार, सोलंकी आदि राजा आपस में लड़ाई करते रहते थे। एक राजा का जितना अपना क्षेत्र होता था वही उसका देश होता था। इससे अधिक की फिक्र वह नहीं करता था। सिर्फ अपने राज्य को ही सुरक्षित रखने के लिए वह संघर्ष करता था। अजमेर और दिल्ली के राजा को कन्नौज अथवा कालिंजर के उजड़ जाने से कोई दुख नहीं होता था अपितु प्रसन्नता होती थी। उस समय के राजाओं ने अपने राज्य की सीमा को ही राष्ट्र समझ रखा था। उसकी सीमा में चाहे 100 गाँव ही क्यों न आते हों। चूँकि कवि राजाश्रय में जीवन यापन करते थे इसलिए कवि भी अपने राजा के अलावा शेष को नीचा दिखाने के लिए काव्य में रत रहते थे जबकि अपने राजा की झूठी सच्ची-बातों को बढ़ा-चढ़ा कर चक्रवर्ती सम्राट घोषित करने में कोई संकोच महसूस नहीं करते थे। कवि जनता से अलग रहने के कारण सामंती वैभव एवं ऐश्वर्य का वर्णन अधिक मात्रा में करते थे। राजाओं के रहन-सहन के स्तर को भी बढ़ा-चढ़ाकर काव्य करते थे। प्रत्येक रचना राजा की खुशामद करने के लिए थी। हालाँकि जैन, बौद्ध कवि जनता के कवि थे लेकिन अपनी भक्ति-पद्धति तक ही सीमित थे।

4. ऐतिहासिकता का अभाव

इस काल के कवियों ने ऐतिहासिकता का ठीक से पालन नहीं किया। अपने राजा की प्रशंसा में इतनी अधिक तिथियों की गड़बड़ी कर दी हैं कि आचार्य शुक्ल ने तो 'पृथ्वीराज रासो' को जाली ग्रंथ तक कह दिया। अपने राजा को तमाम काल्पनिक शक्तियों से संबद्ध कर युद्ध में चक्रवर्ती घोषित कर दिया जबकि दूसरे महत्वपूर्ण राजा के शक्तिशाली राज्य को अपने राजा से हीन साबित कर दिया। प्रायः सभी रासो ग्रंथों में ऐतिहासिकता का अभाव है। इन कवियों ने अपने राजा को ऐसे राजाओं का विजेता घोषित कर दिया जो उनके समय में थे ही नहीं। आचार्य शुक्ल ने इसीलिए कहा है- 'इस तरह के काव्य में कल्पित घटनाओं की बहुत अधिक योजना रहती थी।'

5. आश्रयदाताओं की प्रशंसा

इस युग में प्रायः सभी कवि किसी न किसी राजा के दरबारी थे। इसलिए दरबार में अपने राजा की प्रशंसा में काव्य रचा करते थे। राजा की वीरता, युद्धप्रियता, धर्मपरायणता, ऐश्वर्य एवं धन बल की प्रशंसा करना इनका मुख्य कार्य था। इसके एवज में राजा इनको दरबार में मान तथा पुरस्कार दोनों देता था। इसलिए यह प्रवृत्ति राजाश्रित कवियों में आम थी। तभी तो जयचंद्र जैसे देशद्रोही की भी तारीफ में भट्ट केदार नामक कवि ने 'जयचंद्र प्रकाश' नामक काव्य ग्रंथ रच दिया। इन कवियों का आमजन से विशेष लगाव नहीं रह गया था। जनता से रचना का संबंध सिर्फ श्रोता का रह गया था। प्रत्येक रचना राजा को खुश करने के लिए थी। जनता के कष्टों से कवियों का कोई लेना देना नहीं था।

6. वीर एवं श्रृंगार रस की प्रधानता

इस काल के कवियों की रचनाओं में प्रायः वीर एवं श्रृंगार दोनों रसों का मिश्रित रूप प्राप्त होता है। उस समय वीरता के उदात्त काव्य ग्रंथों की रचना हुई है। वीर रस का एक उदाहरण देखें -

बारह बरस लौ कूकर जियें और तेरह लौ जिये सियार
बरस अठारह क्षत्री जिये आगे जीवन को धिक्कार!

उस समय गहरवार, चौहान, चंदेल, परिहार, सोलंकी आदि राजा आपस में लड़ाई करते रहते थे। युद्ध करना ही एक मात्र धर्म बन गया था। युद्ध ही विवाह का कारण थे। स्त्रियों के कारण श्रृंगारिक वर्णन भी रस लेकर किया जाता था। स्त्रियों का मोहिनी रूप चित्रित करने के लिए उनके नख-शिख वर्णन पर जोर दिया जाने लगा था। इससे राजा प्रसन्न होता था। इसके बाद कवि को पुरस्कृत करता था। इस कारण से वीर काव्य में वीर रस के साथ श्रृंगार भी सहयोगी रस के रूप में मौजूद रहता था। उदाहरणस्वरूप -

मनहु कला ससभान कला सोलह सो बन्निय।
बालबैस, ससिता, समीप, अम्रित रस पिन्निय।।

इसीलिए वीर रस श्रृंगार का आलंबन लेकर ही पदार्पण करता है। निरंतर युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने वाले एक वर्ग की आवश्यकता थी। चारण इसी श्रेणी के कवि थे। जिस प्रकार यूरोप में युद्ध और प्रेम वीर काव्यों का विषय रहा है उसी तरह आदिकाल में भी वीर एवं श्रृंगार रस की प्रधानता विद्यमान रही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं - 'उस समय तो जो भाट या चारण किसी राजा के पराक्रम, विजय, शत्रु, कन्याहरण का अत्युक्तिपूर्ण आलाप करता था रणक्षेत्रों में जाकर वीरों के हृदय में उत्साह की उमंगें भरा करता था, वही सम्मान पाता था।'

7. युद्धों का सजीव वर्णन

युद्धों का वर्णन इतना जीवंत है कि आँखों के सामने साक्षात युद्ध-सा दृश्य उपस्थित हो जाता है। रथों, घोड़ों, हाथियों का दौड़ना, तलवारों, भालों की टकराती सनसनाहट मानो स्पष्ट सुनाई पड़ रही हो। पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गोरी के बीच युद्ध का वर्णन। 'परमाल रासो' में आल्हा ऊदल की वीरता का वर्णन। खुमान युद्ध में खुमाण राजा के पराक्रम का वर्णन आदि। राजाओं की वीरता के किस्से कवियों की काव्य रचना के प्रिय विषय थे। उस समय के अधिकांश काव्यों में वीररस की प्रधानता है। युद्ध क्षेत्र का एक दृश्य देखें-

खट-खट करके तेगा बोले। छपक छपक बोलै तलवार।।

इस समय कवि भी युद्ध में राजा के साथ जाते थे। इसलिए कवि ने अपनी आँखों से युद्ध को देखा था। चंदबरदाई स्वयं राजा के साथ युद्ध करते थे- "पुस्तक जल्हण हत्थ दें चलि गज्जन नृपकाज"।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस संबंध में लिखते हैं- "लड़ने वाली जाति के लिए सचमुच चैन से रहना असंभव हो गया था। क्योंकि उत्तर-पूरब, दक्षिण, पश्चिम सब ओर से आक्रमण की संभावना थी निरंतर युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था। चारणी इसी श्रेणी के लोग हैं। उनका कार्य ही था हर प्रसंग में आश्रयदाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली योजना का आविष्कार।"

8. सिद्ध, नाथ एवं जैन साहित्य

सिद्ध साहित्य - ये सिद्ध कवि बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा से थे। आचार्य शुक्ल ने इनकी संख्या 84 बताई है। सिद्ध साहित्य के अंतर्गत अप्रभंश के दोहों तथा चर्या पदों को लिया जाता है। इन्होंने समाज में व्याप्त आडंबरों और पाखंडों पर अपने साहित्य के द्वारा चोट कर अपने मत का प्रचार किया। सिद्ध कवियों की परंपरा सातवीं से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक मानी जाती है। इन सिद्धों ने भाषा एवं भाव के धरातल पर भक्ति साहित्य के निर्गुण संतों को बहुत हद तक प्रभावित किया। इन सिद्धों का संबंध स्वयं समाज के निम्न वर्ग से था। इन्होंने अपने साहित्य में स्त्री को योगिनी, महामुद्रा एवं शक्ति के रूप में दिखाया है। इनका प्रमुख वाक्य था- 'जोई जोई पिण्डे सोई ब्रहमंडे।' निरक्षर जनता में इनका काफी प्रभाव था। सन्ध्या भाषा में ये जनता को अपनी अटपटी शब्दावली में संबोधित करते थे। नाद, शशि, रवि, पवन, षटचक्र, तरुवर, बिंदु, पंचमकार, पंचविडाल इनके प्रतीकात्मक शब्द थे। इनके साहित्य में योनि की पूजा का भी प्रचलन मिलता है। डॉ. रामकुमार वर्मा कहते हैं कि- "सिद्ध साहित्य का महत्व इस बात में बहुत अधिक है कि उससे हमारे साहित्य के आदि रूप की सामग्री प्रामाणिक ढंग से प्राप्त होती है।"

हालाँकि ऐतिहासिक रूप से इनकी परंपरा बौद्ध धर्म की विकृति के रूप में दिखाई देती है। सरहपा के अतिरिक्त शबरपा, लुईपा, डोम्भिपा, कण्हपा आदि प्रमुख सिद्ध कवि हुए थे। इनकी भाषा में अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। उदाहरण देखें-

नाद न बिंदु न रवि न शशि मण्डल चिअराअ सहाबे मूकल
अजु रे उजु छाड़ि मा लेहु रे बंक निअहि बोहिया जाउ रे लोक।

नाथ साहित्य - सिद्धों की विकृति को दूर करने का प्रयास नाथ साहित्य में किया गया है। इस पंथ में शिव को आदि रूप माना जाता है। तत्कालीन समाज में व्याप्त कर्मकाण्ड के मकड़जाल से मुक्ति दिलाने का ऐतिहासिक कार्य नाथ पंथियों ने किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में इनकी संख्या नौ मानी है। इसमें गोरखनाथ प्रमुख हैं। नाथ पंथ को सिद्धों की परंपरा का ही विकसित रूप समझना चाहिए। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार - "नाथ पंथ से ही संत मत का विकास हुआ था, जिसके प्रथम कवि कबीर थे। अतः नाथ संप्रदाय को सिद्ध संप्रदाय और संतों के बीच की कड़ी के रूप में माना जा सकता है, इनके काव्य में गुरु महिमा, इन्द्रिह निग्रह, प्राण साधना, वैराग्य, कुण्डलिनी जागरण, शून्य समाधि आदि का वर्णन मिलता है। हठयोग साधना इनके काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है।" इनकी कविता के नमूने के रूप में मूर्त जगत में अमूर्त के निरूपण को हम इस रूप में देख सकते हैं-

अंजन मांहि निरंजना भेट्या, तिलमुख भेट्या तेलं।
मूरति माहिं अमूरति परस्या, भया निरंतर खेलं।

इन्होंने जप-तप, शास्त्र तथा तीर्थों की जगह आत्मशुद्धि पर विशेष जोर दिया। इनके साहित्य में इड़ा, पिंगला, इंगला, सुरति, निरति, नाद, बिंदु, शून्य, पवन, निरंजन, चंद्र आदि पारिभाषिक शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है।
सामान्यतः नाथों का समय सिद्धों और संतों के बीच 11वीं से 13वीं सदी के मध्य तक माना जाता है। सारांशतः इन्होंने सिद्धों की अश्लील साधना से समाज को अलग कर हठयोग की पद्धति पर चलकर ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग दिखाया।

जैन साहित्य - एक तरफ देश के पूर्वी भाग में बौद्ध धर्म से प्रभावित सिद्ध कवि अपने साहित्य के द्वारा जनता में प्रभाव जमाने का प्रयास कर रहे थे दूसरी तरफ पश्चिमी भाग में जैन आचार्य लोग अपने धर्म का प्रचार साहित्य के द्वारा कर रहे थे। इनके द्वारा लिखा गया साहित्य कथा, धर्म, उपदेश एवं रहस्यवाद की श्रेणी में आता है। जैन कवियों को साहित्य की अनेक परंपराओं का सूत्रपात करने का श्रेय जाता है। इन कवियों ने लोक आख्यानों पर विशेष बल दिया है। हालाँकि जैन साहित्य विविध विषयक है। आदिकालीन जैन कवियों ने चरितकाव्य की सुंदर परंपरा का उद्घाटन किया। जैनकथा काव्यों में स्वयंभूकृत 'पउमचरिउ' और 'रिटठ्णेमि चरिउ', पुष्पदंत कृत 'महापुराण' उल्लेखनीय हैं। उपदेशात्मक काव्यों में जिनदत्त सूरि कृत 'उपदेश रसायन' का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। जैन कवियों ने बाह्यचार का विरोध कर मन की पवित्रता के लिए आंतरिक साधना पर जोर दिया। इन्होंने शांत रस को रसराज के रूप में अपनाया है।

इस साहित्य में भरतेश्वर बाहुबली रास, नेमिनाथ फागु, पंच माण्डव, चरितरास विराटपर्व, ज्ञान-पंचमी, चौपाई आदि महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। जैन साहित्य में फागु, छप्पय, प्रबंध, दोहा, गीत, स्तुति आदि प्रारंभिक काव्य रूप भी प्राप्त होते हैं। इनकी भाषा में नाटकीयता, रसात्मकता एवं उक्ति वैचित्र्य के अद्भुत नमूने मिलते हैं। डॉ. गणतिचंद्र गुप्त जैन साधु श्री शालिभद्र सूरि द्वारा रचित 'भरतेश्वर बाहुबली रास' से हिंदी में रासो परंपरा की शुरुआत मानते हैं। इसको इन्होंने हिंदी और अपभ्रंश के बीच की संधि रेखा माना। यह वीर रस पूर्ण रचना है लेकिन अंत निर्वेद में हुआ है।

फागु काव्य - रासो परंपरा की तरह जैन कवियों ने फागु रचनाएँ भी की हैं। यह काव्य प्रकार जैन कवियों से पहले संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कहीं भी नहीं मिलता है। फागुन के महीने में आज भी इन लोकगीतों को बड़े आदर के साथ गाया जाता है। डा. गणपतिचंद्र गुप्त के अनुसार- "जैन कवियों ने लोक परंपरा से ही प्रेरित होकर इसकी प्रतिष्ठा साहित्य में की है।" इन गीतों की लोकप्रियता देखकर जैन कवियों ने उसको अपने महापुरुषों के उपदेशों का प्रचार माध्यम बनाया।

9. छंदों और अलंकारों का प्रयोग

आदिकालीन साहित्य छंदों के प्रयोग की दृष्टि से बहुत ही संपन्न काल कहा जाएगा। छंदों का जितना व्यापक एवं विकसित प्रयोग इस काल में मिलता है वैसा इससे पूर्व नहीं है। दोहा इस काल का प्रमुख छंद है। इसके साथ ही सोरठा, चौपाई, गाहा, छप्पय, अरिल्ल, त्रोटत, तोमर, गाथा, पद्धरि, रोला, उल्लाला, घनाक्षरी सवैया, कुण्डलिया, कवित्त, आल्हा, हरिगीतिका आदि छंद प्रयोग में लाए गए हैं। छंदों के प्रयोग में इस काल के कवि को जो कुशलता प्राप्त थी वह अद्भुत है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार - "रासो के छंद जब बदलते हैं, तो श्रोता के चित्त में प्रसंगानुकूल नवीन कम्पन्न उत्पन्न करते हैं।"

'पृथ्वीराज रासो' में छप्पय छंद का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। इसीलिए चंदबरदाई को छप्पयों का राजा तक कहा जाता है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार - "यही कवि हिंदी काव्यधारा के प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष, भास, कालिदास और बाण की सिर्फ जूठी पत्तले नहीं चाटते रहे, बल्कि उन्होंने एक योग्य पुत्र की तरह हमारे काव्य क्षेत्र में नया सृजन किया है, नए चमत्कार, नए भाव पैदा किए। नए-नए छंदों की सृष्टि करना तो इनका अद्भुत कृतित्व है। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी के ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं।"

अलंकार - इस काल के कवियों ने प्रायः सभी अलंकारों का यथास्थान प्रयोग किया है। आलंकारिक भाषा से संयोग एवं वियोग के पक्षों का चित्रण करने में कवि रोचकता पैदा करता था। इसके परिणामस्वरूप वह पुरस्कृत भी होता था। उपमा, रूपक उत्पेक्षा, श्लेष, यमक, अनुप्रास, अतिशयोक्ति, संदेह आदि सभी अलंकारों का सफल प्रयोग इस काल के कवियों ने किया है।

10. खड़ी बोली की कविता

अमीर खुसरो इस काल के सबसे पहले कवि थे जिन्होंने खड़ी बोली का प्रयोग अपनी पहेलियों, मुकरियों आदि में किया था। यह परंपरा आज भी चली आ रही है। उनका उदाहरण देखें-

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस।।

अमीर खुसरो से पूर्व डिंगल तथा पिंगल अधिक प्रयोग में आती थी क्योंकि यह शास्त्र के अनुकूल थी। डिंगल शब्द का अर्थ गँवारू से लिया जाता है। डिंगल में चारणों ने अधिक काव्य लिखा है। पिंगल में भाटों ने अधिक काव्य लिखा है। दक्षिण पश्चिमी राजस्थान में डिंगल चलती है और पूर्वी राजस्थान एवं ब्रज क्षेत्र में पिंगल का प्रयोग होता है।

अमीर खुसरो के ग्रंथों की संख्या सौ बताई जाती है जिनमें अब बीस-इक्कीस ही उपलब्ध हैं। खलिकबारी, पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सुखने, गज़ल आदि के माध्यम से खड़ी बोली को काव्य भाषा बनाने वाले वे पहले कवि थे। इनकी रचनाओं में खड़ी बोली अपना आकार ग्रहण करती है। इसलिए कथ्य की दृष्टि से चाहे ये भले ही कमजोर रचनाएं हो पर शिल्प की दृष्टि से ये बेजोड़ हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार - 'खुसरो के समय में बोलचाल की स्वाभाविक भाषा घिसकर बहुत कुछ उसी रूप मे आ गयी थी जिस रूप में खुसरो में मिलती है। कबीर की अपेक्षा खुसरो का ध्यान बोलचाल की भाषा की ओर अधिक रहा है।' अमीर खुसरो ने अरबी फारसी, तुर्की, ब्रजभाषा के साथ खड़ी बोली का अद्भुत मिश्रण करके हिंदी साहित्य के इतिहास में एक नया अध्याय रच दिया।

11. आदिकालीन गद्य साहित्य

आदिकाल में जैन रचनाकारों के साथ दूसरे रचनाकारों ने भी गद्य में लेखन कार्य किया है। राउरवेल (चम्पू), 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण' और 'वर्ण रत्नाकर' आदि गद्य की प्रमुख रचनाएँ हैं। 'राउलवेल' एक शिलालेख की कृति है। यह गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू काव्य है। इस रचना से हिंदी में नख शिख वर्णन की श्रृंगार परंपरा आरंभ होती है। कवि ने गद्य में भी आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है। यह 11वीं शती की रचना मानी जाती है।

उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण - यह व्याकरण ग्रंथ है। 12वीं शती में इसकी रचना दामोदर शर्मा नाम के कवि द्वारा की गई। इसकी हिंदी भाषा तत्सम शब्दावली के प्रयोग की ओर बढ़ती हुई है। इससे पूर्वी हिंदी की पूर्ववर्ती परंपरा का भान होता है।

वर्ण रत्नाकर - इसके लेखक ज्योतिरीश्वर ठाकुर हैं। यह मैथिल हिंदी में रचित गद्य पुस्तक है। इसकी भी भाषा आलंकारिक तथा तत्सम बहुला है।

कथानक रूढ़ियों का प्रयोग - आदिकालीन साहित्य में कथा कहने का एक अपना ढंग भी विकसित हुआ था जिसे कथानक एवं रूढ़ि कहा जाता है जिसका आगे के साहित्य में विकास हम देख सकते हैं। शुक, दूती, दैवी शक्तियों के द्वारा इन रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है। रासो साहित्य में इन रूढ़ियों का प्रयोग बहुतायत में किया गया है। इस शैली का प्रयोग संस्कृत साहित्य से होते हुए अपभ्रंश साहित्य में भी परम्परागत रूप में विद्यमान है। इसी में एक प्रकार संवाद शैली का भी है जिसका प्रयोग भक्ति काल में गोस्वामी तुलसीदास एवं आगे चलकर रीतिकाल में केशवदास ने भी किया है।

आदिकाल में घटनाओं को आगे बढ़ाने के लिए कथानक रूढ़ियों का प्रयोग होता था। ऐसे प्रसंग आगे के साहित्य में भी रूढ़ि की तरह ही प्रयुक्त हुए हैं जैसे- कहानी कहने वाला सुग्गा, स्वप्न में प्रियदर्शन, चित्र दर्शन, कीर्ति श्रवण से अनुराग, मुनि का शाप, रूप परिवर्तन, परकाया प्रवेश, आकाशवाणी, षडऋतु, बारहमासा, हंस, कपोत से संदेश कथन आदि। इन रूढ़ियों का प्रयोग हमारी फिल्मों में भी कई बार हुआ है। खासकर शुरुआती फिल्मों में। मैं समझता हूँ शायद यह आदिकालीन साहित्य का ही प्रभाव रहा होगा।

12. निष्कर्ष

आदिकालीन हिंदी साहित्य में तब से लेकर आज तक की सभी प्रवृत्तियों को खोजा जा सकता है क्योंकि यह समस्त प्रवृत्तियों के प्रस्थान का काल भी है। धार्मिक, साहित्य, लौकिक जैन साहित्य, रासो साहित्य का युद्ध वर्णन के साथ नायिका भेद एवं नाथों का हठयोग, खुसरो की पहेलियाँ, नख-शिख वर्णन, छंदों के विपुल प्रयोग आदि को इस काव्य के महत्वपूर्ण योगदान के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। आदिकाल ने परवर्ती काल के लिए कई परंपराओं का सुव्यवस्थित योगदान दिया है। अनेक काव्य रूप एवं शैली आज भी आदिकाल से अभिग्रहण कर रहे हैं।